International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 02(II), April - June, 2022, pp. 211-215

धर्म की राजनीति और स्त्री

मीनाक्षी मधुर*

सार

'धर्म' एक आध्यात्मिक संसार, एक दार्शनिक धरातल, एक ऐसा आदर्श,एक ऐसी सृजनात्मक शक्ति जिसे व्यक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखता है और इस हेतु सार्थक प्रयास भी करता है। धर्म ने अनेक रहस्य को जन्म दिया है जिसको जानने के प्रयास में मानवीय सभ्यता आदि काल से ही रचनात्मक तथा विध्वंसकारी दोनों ही प्रकार की गतिविधियों में संलग्न रही है। इतिहास साक्षी है कि जहां धर्म का सहारा लेकर मनुष्यों में अनुशासन, नियम, अध्यात्म तथा नैतिक गुणों का विकास किया गया, वहीं दूसरी ओर इसी धर्म ने कुरीतियों, कुप्रथाओं, कर्मकांड का प्रयोग करके मानवीय सभ्यता को विनाश के मुहाने पर भी ला खड़ा किया। धर्म का एक विशेष गुण यह है कि वह अपने प्रत्येक रूप में मनुष्य से एकाकार होता है धर्म का कोई साकार रूप नहीं है हम उसे देख नहीं सकते, उसे छू नहीं सकते हैं, मात्र उसका अनुभव ही कर सकते हैं।और जब यह अनुभव, श्रद्धा भक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पर पहुंचती है तो धर्म का यह अंधविश्वास और अंधभक्ति मनुष्य को विध्वंशकारी गतिविधियों की ओर मोड़ देती है और उसे बर्बर बना देती हैं। एक और जहां धर्म ने इतने उच्च आदर्शों की स्थापना की है, मनुष्य में नियमों, आदर्श और नैतिकता आध्यात्मिक एवं समानता आदि गुणों का संचार किया है वहीं दूसरी ओर धर्म ' स्त्रियों' को समानता का दर्जा देने में मौन क्यों धारण कर लेता है ? संसार के सभी धर्मों में स्त्रियों को द्वितीय की स्थिति ही प्राप्त है ' जबकि वह समाज की सबसे बड़ी सृजनात्मक शक्ति है।' इसी तथाकथित धर्म का सहारा लेकर उन पर सदियों से अत्याचार और उनका शोषण किया गया है। संविधान द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है, फिर भी भारतीय राजनीति में धर्म की एक विशेष भूमिका है। हम धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना तो कर पाए हैं, किंतु धर्मनिरपेक्ष समाज की नहीं। धार्मिक विभिन्नता के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव पैदा होते हैं और इन तनाव को बढ़ाने में विभिन्न समुदाय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा करते हैं। इससे उनके स्वार्थ सिद्ध होते हैं।

शब्दकोश: *धर्मनिरपेक्ष समाज, अंधविश्वास, अंधभक्ति, विध्वंशकारी गतिविधियों, भारतीय राजनीति।*

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है स्त्री समाज को रचती है और फिर वही समाज स्त्री को अपने तरीके से रचयिता है। वैश्विक आबादी का लगभग 50 प्रतिशत महिला आबादी है लेकिन फिर भी इतनी बड़ी महिला जनसंख्या को विश्व के लगभग सभी समाजों में तथा सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, यथा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक तथा पारिवारिक क्षेत्र में भी प्रतिक्षण भेदभाव एवं अन्याय का सामना करना पड़ता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी स्थिति द्वितीयक ही है। कोई भी समाज महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों तथा अन्याय को समाप्त किए बिना एक सभ्य समाज का दावा नहीं कर सकता है। यदि हम विधिवत रूप से नारीवादी अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें अपना अध्ययन जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को अपने अधीन करने वाली जटिल संरचना से करना होगा और जटिल संरचना है, "पितृसत्ता"। ऐतिहासिक दृष्टि से यह संरचना विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। "समाज धर्म रीति रिवाज संस्कृति परंपरा एरिया नैतिकता आदि का सहारा लेकर इस जटिल परंपरागत संरचना ने अनादिकाल से यह विभिन्न प्रकार से महिलाओं का शोषण किया है।"[1]

---

* सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

धर्म का अर्थ

"धारयती इति धर्म" अर्थात धर्म का अर्थ होता है धारण करना या जो धारण करने योग्य हो उसे धारण करना चाहिए। दरअसल धर्म ने मानव को पाप मुक्त रखने की कोशिश अवश्य की है लेकिन यह सच है कि धर्म ने जितना मानवता का फायदा किया है उससे कहीं ज्यादा नुकसान किया है। लेकिन इसका दोष धर्म को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि सभी धर्मों में मानवता के हित ही सर्वोपरि हैं। लेकिन समस्या उनके अनुयायियों ने पैदा की है, जिन्होंने जानबूझकर या अनजाने में धर्म की आड़ में अपने हित साधे हैं और धर्म के पास इस समस्या का कोई जवाब नहीं है। लोगों ने अपनी जरूरतों के हिसाब से धर्म का और उनके ईश्वर का निर्माण कर लिया है।

सच्चाई यह है कि जिन्हें धार्मिक परंपरा मानकर इतना पवित्र माना जाता है, वे वास्तव में सामंती परंपराओं के अवशेष, उनके अपने मूल्य हैं जो धर्म का मुखौटा और कर हम तक चले आए हैं। क्योंकि धर्म के बारे में मानना है कि उसका किसी तर्क, किसी वैज्ञानिक सोच से कोई लेना–देना नहीं हो सकता वह, तो आस्था से जुड़ा हुआ है। सामंतवाद आज की तारीख में इसी धार्मिक चोले में अपनी अतार्किकता, अपनी अमानवीयता को बचा कर रख सकता है, क्योंकि उस पर प्रश्न लगाना सबसे कठिन है। यह एक संवेदनशील मामला है। सामंतवाद स्त्री के हर तरह के इस्तेमाल में विश्वास रखता है लेकिन उसे अधिकार देने के मामले में नहीं।

धर्म का स्त्रियों के जीवन पर प्रभाव

जब हम धर्म की बात करते हैं तो यह देखना जरूरी हो जाता है कि धर्म में स्त्री को क्या दिया है? स्त्री को स्वतंत्रता दी या उसके अधिकारों का हनन किया ? धर्म ने स्त्री को गुलामी की कौन–कौन सी सीढ़ियां चढ़ने को मजबूर किया? किन–किन संस्कारों की पवित्र अग्नि से स्त्री के मन को जलाने की लंबी परंपरा चलाई? कौन–कौन से व्रत – उपवास के जरिए स्त्री की आत्मा की शुद्धि का प्रयास किया? धर्म ने स्त्री के लिए किस तरह के दंड का प्रावधान किया ? इस पर दृष्टि डालना अति आवश्यक है।

विवाह हो या धर्म, कानून हो या समाज, सब पर पितृसत्तात्मक जड़ता का आधिपत्य रहा है।स्त्री के अधिकार पर कहर बनकर टूटा है दृधर्म। धर्म किसी भी तरह से स्त्री की स्वतंत्रता का हिमायती नहीं है। धर्म स्त्री की स्वतंत्रता का तीव्रता से दमन करता है और व्रत, उपवास व संस्कारों की गहरी खाई में धकेल देता है। इस्लाम ने अपने नियम कायदों में स्त्री की स्वतंत्रता को कैदी बनाकर उसे प्रताड़ना व जिल्लत भरी जिंदगी जीने पर मजबूर किया।

ईसाईयत ने भी स्त्री के दमन की प्रक्रिया को लगातार बढ़ावा दिया। पुराणों में लिखा गयाकृ"औरत अधम है, छलना है, व्यभिचारिणी है। जो पुरुष अपनी भलाई चाहता है उसे औरत से दूर रहना चाहिए उसकी कोई गति नहीं है। कबीर ने कहा है, "नारी की झाईं परत कबिरा होत भुजंग।"[1] इसी प्रकार 'तुलसी' ने भी "ढोल, गवार, शुद्र, पशु, नारी– यह सब तारण के अधिकारी"[2] कहकर स्त्री की अस्मिता पर चोट किया कबीर से लेकर तुलसी तक ने स्त्री के अस्तित्व की एक अलग एवं कमजोर परिभाषा गढ़ी।

आज यह छिपा नहीं रह गया है कि धर्म और नैतिकता के नाम पर सबसे ज्यादा अत्याचार औरतों पर ही हो रहे हैं। 'राजेंद्र यादव'ने बड़े ही सटीक ढंग से यह बताने का प्रयास किया है कि,"सामंती व्यवस्था के पिरामिड के आकार में ऊपर से नीचे की ओर फैलती है हर पत्थर और धोखे का कर्तव्य है कि वह जहां है वहीं उसे बने रहना है वरना यह शीर्ष शीर्ष के प्रति विश्वासघात हैं।"[3]

आगे राजेंद्र यादव बताते हैं कि छोटी सी छोटी ईट को अर्थात 'स्त्री' को यह विश्वास होना चाहिए कि पिरामिड उसके वहां होने पर ही टिका है।सारी मूल्य सहिंता और व्यवस्था की बनावट यही है। जो ईंट अपने कर्तव्य या धर्म से जरा भी हिलती या ऊपर जाने की कोशिश करती है, वह या तो तोड़ दी जाती है या फिर बेकार घोषित करके फेंक दी जाती है जिससे वह अपने निरर्थक और अनुपयोगी होने के अपराध बोध को जीती हुई स्वयं ही समाप्त हो जाए। हमारे समाज का यह कटु सत्य है जिसे राजेंद्र यादव ने अपने तीखे शब्दों में व्यक्त किया।

भारत में स्त्रियों की गई छवियां रही हैं। पहली छवि 'देवी'की है, जिसकी पूजा की जाती है। यह आकस्मिक नहीं है कि स्त्रियों के नाम के साथ 'देवी' शब्द (जैसे– रामावती देवी, महादेवी आदि) जोर दिया जाता है इसके अतिरिक्त 'कुमारी' शब्द को भी जोड़ा जाता है जो देवी का प्रतीक है। (उदाहरणार्थ– कुमारी पूजा)। इसी संदर्भ में 'मनु' ने कहा है कि, "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता, अर्थात जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता रमण करते हैं।"[4]

लेकिन दूसरी छवि इसके बिल्कुल विपरीत है, जिसमें स्त्रियों के लिए 'ढोल, गवार, शुद्र, पशु, नारी –यह सब तारण के अधिकारी'(तुलसीदास), 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' (जयशंकर प्रसाद),' अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी–आंचल में है दूध और आंखों में पानी' 'पराया धन', 'त्रिया चरित्र'जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो 'मनु' स्त्रियों की पूजा करने की बात कहते हैं वही उनका इस बात पर जोर है, कि स्त्री को हमेशा बंधन में रखना चाहिए। "स्त्री बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहे। वह कभी भी स्वतंत्र ना रहे।"[5]

जब धर्म शास्त्रों का निर्माण हुआ तो एक निष्ठ परिवार के अंतर्गत स्त्री पूर्णता पुरुष के अधीन थी।समाज को नियंत्रित करने के लिए बनने वाले कोई भी नियम कानून तत्कालीन समाज में सत्ताधारी वर्ग और उसकी इच्छा के अनुकूल ही बनते हैं। इसलिए जो भी नियम बने उसमें स्त्रियों के लिए उसके पति ही सेव्य या आराध्य यानी सब कुछ समझे गए। यह सारी धारणाएं या मान्यताएं धर्म के नाम पर मानव समाज ने संस्कार के रूप में आत्मसात कर लिया जबकि यदि स्त्रियों को स्वतंत्रता होती तो वे पुरुषों के बनाए गए कानून और धर्म शास्त्र के उन स्थलों को जिनसे उनका संबंध है, पैरों से ठुकरा देती और अपना कानून और धर्म शास्त्र स्वयं निर्मित करतीं।

'डॉ अमरनाथ' बताते हैं कि,"हमेशा से नारी को भोग और विलास की सामग्री एवं आध्यात्म का दुश्मन माना जाता रहा है। वैदिक कालीन भोग बाद के बाद जब समाज आध्यात्म की ओर झुका तो नारी सहज ही नरक का द्वार और दुर्गुणों की खान घोषित कर दी गई।"[6]

अतः 'डॉ अमरनाथ' यह कथन से स्पष्ट है कि समूची मानवता पुरुष जाति की है। स्त्री एक स्वतंत्र प्राणी नहीं है वह सामान्यता वही है जो पुरुष तय करता है। पुरुषों की दृष्टि में स्त्री सिर्फ भाग्य है और कुछ नहीं। स्त्री का मूल्यांकन हमेशा पुरुषों के परिप्रेक्ष्य में, पुरुषों के साथ रखकर किया जाता है। पुरुष के अनुसार, स्त्री आकस्मिक है, आश्रित है, अपूर्ण है।

पुरुषवादी सोच व धर्म पर राजेंद्र यादव ने करारा व्यंग्य किया है। वे बताते हैं कि," सारी साहित्यिक और सांस्कृतिक गरिमा में शब्द जाल से आदमी ने औरतों की जिस एक चीज को मारा कुचला या पालतू बनाया है वह है उसकी स्वतंत्रता।"[7] यह बड़ी विडंबना है कि पुरुषों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार धर्म के नाम पर विभिन्न प्रकार के नियम– कायदों को स्त्रियों पर थोपा और उसे बंधन में बांध कर रखने का प्रयास किया है ।

व्यक्तिगत और लौकिक धरातल पर जीवन चाहे जितना बड़ा उत्सव हो।मगर दार्शनिक और सांस्कृतिक स्तर पर हिंदू धर्म सबसे बड़ा मृत्यु पूजन धर्म है।जहां धर्म के नाम पर बड़े तार्किक और बारीक ढंग से हत्या और आत्महत्या का अंतर मिटा दिया गया है ।'सती प्रथा'एक ऐसा ही हिंदू धर्म है जिसमें भारतीय स्त्री इतनी सहजता से आत्महत्या करती है कि उसकी हत्या में भी कहीं अस्वाभाविकता नहीं लगती। उसकी हत्या या आत्महत्या कहीं पर भी कोई अपराध बोध नहीं जगाती ।भ्रूण से लेकर के बुढ़ापे तक उसे कभी भी कोई निष्कंटक मार सकता है। सुप्रीम कोर्ट के द्वारा मृत्यु को मौलिक अधिकार घोषित किए जाने वाले फैसले को इसी धार्मिक परंपरा की आधुनिक शब्दावली के रूप में देखा जाना चाहिए।

धर्म का प्रसार कुछ इस प्रकार किया गया है कि ईश्वर के प्रति भी मनुष्य की कल्पना हास्यास्पद हैं। अधिकांश धर्मों तथा दार्शनिक पद्धतियों में ईश्वर की कल्पना पुरुष के रूप में की गई है, और इस पर आज तक विश्वास किया जाता है। यह पुरुष सत्ता की बहुत बड़ी व सोची–समझी धार्मिक नीति है। इस संबंध में स्त्रीवादी विचारक 'राजकिशोर' का कथन है कि, "ईश्वर की कल्पना ज्यादातर पुरुष के रूप में की गई है और

स्त्री देवताओं की यानी देवियों की कल्पना भी की गई है तो उन्हें विशेष महत्व नहीं दिया गया है।"[8] इससे यह पता चलता है कि स्त्री–पुरुष का यह कृत्रिम बटवारा तथा पुरुष के प्रभुत्व का विचार मनुष्य के चित्त मेंकितने गहरे तक पैठा हुआ है।

सभ्यता और धर्म

'विश्व की प्राचीनतम सभ्यता में भारतीय और चीनी सभ्यता ही ऐसी हैं, जिनकी सामुदायिक परंपरा अपरिवर्तनीय है। आज भी हमारे देश में 5000 साल पुराने मंत्रों और आचार ओं का पालन किया जाता है। प्रातः काल के सूर्य नमस्कार से लेकर विवाह और दाह संस्कार के मंत्र वहीं है, लेकिन जहां स्त्री जाति को बराबर स्थान देने की बात कही गई थी, वे वाक्य,वे कहावते, और आचार धीरे–धीरे हमारे समाज की स्मृति से लुप्त हो गए।' यह सोचनीय है कि "आज जहां हमारे देश में गौ हत्या को लेकर दंगे शुरू हो जाते हैं,वही मानव भ्रूण हत्या को सिर्फ एक आर्थिक और सामाजिक मजबूरी समझा जाता है। स्त्री का महत्व और सम्मान आज के समाज में क्या एक जानवर से भी कम हो गया है?"[9]

स्त्री को स्त्री बनाने का कार्य धर्म और परंपरा ही परस्पर निभाती हैं। दुनिया भर की संस्कृतियों में धार्मिक परंपराऐं सिर्फ स्त्री को 'नियंत्रण' में रखने के लिए ही बनाई गई थी। जिन्हें स्त्रियां सदियों से थोड़े परिवर्तन के साथ आज भी ढोती चली आ रही हैं।समय,समाज और जीने के अंदाज भले ही आधुनिक माहौल में बदल गया, मगर परंपराऐं लगभग आज भी वही है जो हजारों वर्षों पहले हुआ करती थी।

आधुनिक समाज और धर्म

आज के आधुनिक समय में स्त्री, स्त्री और पुरुष का दायित्व पूरी ईमानदारी और निष्ठा से निभाती हैं। फिर भी आधुनिकता और परंपरा के बीच वह पिस रही हैं। पति की लंबी उम्र के लिए,पुत्र के लंबे व सुखमय जीवन के लिए व्रत करती हैं। एक प्रकार के 'भय' के कारण व स्वयं को इनसे मुक्त रखने में असफल रहती हैं। कई पढ़ी–लिखी, प्रतिष्ठित स्त्रियों को ऐसी परंपराओं व धार्मिक रीति–रिवाजों के विरुद्ध प्रायः देखा जा सकता है, जबकि वास्तविक जीवन में यह स्त्रियां भी कहीं ना कहीं उनकी दास होती हैं "हिंदू धर्म में विवाहित स्त्री के लिए सिंदूर लगाना अनिवार्य है। सूनी मांग अपशगुन मानी जाती है।"[10] शायद ही कोई स्त्री ऐसी हो जो आधुनिक होकर भी सिंदूर लगाने के मुंह से बच पाती हो।"उनके अंदर बैठा 'खौफ', जो तमाम तर्कों को तर्कों के बावजूद अपना अस्तित्व जता ही देता है। ठीक यही स्थिति है कुल नाम की। पति का कुल नाम लगाना, औरत का जन्म नाम बदला जाना हमारी प्राचीन परंपरा है। ऐसा वेद पुराणों में भी संकेत है यह कहा जाता है। पत्नी को पति में पूर्ण समर्पित होने का यह प्रतीक है।"[11]

प्रसिद्ध स्त्री चिंतक, 'अरविंद जैन' ने अपनी कृति,"औरत होने की सजा" में विशेषोक्ति से यह बात साबित करते हैं कि,"सारी धर्म के धर्म ग्रंथ मैंने (यानी पुरुष) ही रचे हैं। धर्म, अर्थ, समाज, न्याय और राजनीति के सारे कायदे कानून मैंने बनाए हैंऔर मैं ही समय–समय पर उन्हें परिभाषित करता हूं।"[12] यह पुरुषवादी सोच सदियों से चली आ रही है। जिसमें स्त्रियां समाज में दोयम दर्जे की प्राणी ही बनकर रह गई है। इसी प्रकार आगे, 'अरविंद जैन' बताते हैं कि "सभी धर्मों का भगवान मैं ही हूं (अर्थात पुरुष) और सारी दुनिया मेरी ही पूजा करती हैं। 'अर्धनारीश्वर' का अर्थ आधी नारी और आधा पुरुष नहीं है बल्कि आधी नारी और आधा ईश्वर है। इसलिए तुम नारी और मैं (पुरूष) ईश्वर हूं। तुम्हारा ईश्वर पतिकृपरमेश्वर में ही हूं।"[13]

इससे पता चलता है कि विश्व के प्रायः सभी धर्मों में ईश्वर को पुरुष के रूप में स्थापित करने में पुरूष सत्ता की राजनीति थी जिसे लंबे समय तक वह उसे उसी रूप में बनाए रखना चाहते थे।आज भी आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में भी 'धर्म' का एकछत्र राज है धार्मिक कृत्यों का प्रसार वैसा ही है जैसे सदियों पहले था। इस संदर्भ में स्त्रीवादी चिंतक, 'कृष्ण कुमार' का कथन है कि,"पुरुष स्वयं को जिस प्रकार देखता है वह उसका प्रकाशित रूप है। उसकी आत्मा का प्रतिस्पर्धी रूप छाया में बना रहता है। पुरुष का प्रकाशित आत्म उसे बलशाली, निर्भय और तर्कशील आदमी के रूप में पेश करता है जिसकी छाया में नारी की निर्बल,कायर और बुद्धिहीन छवि निवास करती है। यही छवि पुरुष के नारी भाव की संचालक है।"[14]

इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म ही वह सबसे बड़ी बाधा रही है जिससे स्त्री जाति कभी मुक्त नहीं हो सकी। वर्तमान में स्त्रियां पहले से अधिक जागरूक हुई हैं। वह अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलंद कर रही हैं। फिर भी यह सर्वविदित है कि धर्म इस तरह के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। किसी न किसी रूप में स्त्रियों को धर्म का, ईश्वर का भय दिखाकर उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया जाता है। यह प्रत्येक स्तर पर होता है, चाहे पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक किसी भी क्षेत्र में, स्त्रियां अगर पीछे रह गई हैं, तो इसका सबसे बड़ा कारण धर्म ही है।

नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन के यह शब्द सच्चाई से परिपूर्ण है कि," स्त्री पुरुष विषमता केवल एक सामाजिक विफलता नहीं है यह अन्य अनेक सामाजिक विफलताओं की जन्म दायिनी भी है सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक कार्य में महिलाओं की भागीदारी के दामन से केवल उन्हीं पर प्रभाव नहीं पड़ता वरन सारा समाज भी आहत होता है नारी विमुक्ति केवल नारीवादी मुद्दा नहीं है यह तो सामाजिक प्रगति का एक अभिन्न अंग है।"[15]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'तुलनात्मक राजनीति और शासन 'डा. बी एल फाडिया एवं कुलदीप फाडिया
2. "उत्तर प्रदेश" (स्त्री विमर्श विशेषांक) वर्ष –30 अंक– 8, मई 2003, पृष्ठ संख्या 57.
3. वहीं, पृष्ठ संख्या –57
4. आदमी की निगाह में औरत, राजेंद्र यादव, सं. वर्ष –2013 संख्या–20, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. भारतीय महिलाओं की दशा, सुभाष शर्मा, सं.– वर्ष 2006 पृष्ठ–संख्या 9, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)।
6. भारतीय महिलाओं की दशा, सुभाष शर्मा, सं.– वर्ष 2006 पृष्ठ– संख्या 9, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)।
7. नारी मुक्ति का संघर्ष, डॉ अमरनाथ, सं.–वर्ष– 2007 पृष्ठ –संख्या 40, रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि. (नोएडा यूपी)
8. 'आदमी की निगाह में औरत', राजेंद्र यादव, सं. वर्ष– 2013, पृष्ठ– संख्या– 14, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. 'स्त्री– पुरुषरूकुछ पुनर्विचार'रू सं.– राजकिशोर, संरूवर्ष– 2006 पृ.–सं.48 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
10. 'स्त्री के लिए जगह' सं.–राजकिशोर, सं. वर्ष– 2006, पृ. सं.– 103, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. 'स्त्री, परंपरा और आधुनिकता', सं.–राजकिशोर, प्र. वर्ष– 1999, पृ. सं.– 73, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. वही, पृ. संख्या 73
13. 'स्त्री होने की सजा' –अरविंद जैन, वर्ष 2011, पृ. संख्या 15, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. वही, पृष्ठ संख्या 15।
15. 'चूड़ी बाजार में लड़की' – कृष्ण कुमार, सं. वर्ष –2014 पृष्ठ संख्या –10, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

❖◆❖